International Journal of Multidisciplinary Trends

E-ISSN: 2709-9369
P-ISSN: 2709-9350
www.multisubjectjournal.com
IJMT 2022; 4(1): 59-61
Received: 22-01-2022
Accepted: 26-03-2022

पंचम खंडेलवाल
सहायक प्रोफेसर (Guest Faculty), राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट, जयपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
पंचम खंडेलवाल
पंचम खंडेलवाल,सहायक प्रोफेसर (Guest Faculty), राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट, जयपुर, राजस्थान, भारत

कला का उद्देष्य एवं सार्थकता

पंचम खंडेलवाल

सार
भारतीय दृष्टि से कला और सौंदर्य का नित्य सहचर संबंध रहा है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही नहीं है। जिस कलाकृति में सौंदर्य नहीं उसको कला के अंतर्गत रखा ही नहीं जा सकता है। सृष्टा या कलाकार की सौंदर्यमयी सर्जना का नाम ही कला है। क्योंकि भारतीय साहित्यकारों और कलाकारों ने एक–दूसरे से प्रेरणा प्राप्त कर अपने–अपने रचनाविधान को परिपुष्ट किया है, अतः सौंदर्य की जो चाह भारतीय साहित्य में अभिव्यक्त है, भारतीय कला पर भी उसका व्यापक प्रभाव लक्षित है। किंतु यह प्रभाव यूनानी कला की भांति केवल बाह्य परिवेष की अलंकृत तक ही सीमित नहीं है, बल्कि कला के आंतर स्वरूप पर भी चरितार्थ है। भारतीय कलाकारों ने सौंदर्य के आदर्ष पक्ष को ग्रहण किया है, किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्होनें वस्तुगत सौंदर्य की उपेक्षा की हो।
कला में सत्यानुभूति उसका आवष्यक अंग है। तभी तो कलाकृति के द्वारा षुद्ध विचारसृष्टि संभव है। उसी को सौंदर्यबोध कहा गया है। वही कला का व्यापक धर्म है।

कुटशब्दः कंचुक, सार्वत्रिक, चिन्मय विलास, तत्वज्ञान, अभीप्सा, अभ्युत्थान, त्रिवर्ग, नैसर्गिक, सर्वसाक्षिक, अंग–उपांग, स्थूल पक्ष।

प्रस्तावना
भारतीय साहित्य और जनजीवन में कला की आराधना सूक्ष्म और स्थूल, दो रूपों में की जाती रही है। इसलिए कला की साधना सूक्ष्म से स्थूल की ओर भी हो सकती है और स्थूल से सूक्ष्म की ओर भी। विद्यारण्य मुनि की 'पंचदषी' के 'चित्रदीप' प्रकरण में कला के इन दोनों रूपों को भलीभांति समझाया गया है।
दर्षन और धर्म की सतह पर कला के स्वरूप पर विचार करने वाले विद्वानों ने कला को महामाया का चिन्मय विलास कहा है। वह महाषिव की सिसृक्षा शक्ति है, जिससे समस्त चराचर की सृष्टि हुई है। शैव दर्षन में कला के आध्यात्मिक महत्व को व्यापक पैमाने पर स्वीकार किया गया है। वहां महामाया के पांच कंचुक गिनाए गए हैं– काल, नियति, राग, विद्या और कला। षिव के लिए यह रूपषक्ति प्रेरणा का कार्य करती है, जिससे शंकर लीलाभूमि (आनन्दातिरेक की अवस्था) में अवतरित होकर सृष्टि–रचना के लिए प्रवृत्त होते हैं।
'ललितास्तवराजस्तोत्र' में इसी उद्देष्य को लक्ष्य करके कहा गया है कि षिव को जब लीला के प्रयोजन की अनुभूति होती है तब महाषक्तिरूपा महामाया से प्रेरित होकर वह जगत् की सृष्टि करते हैं। इसलिए षिव की लीलासहचरी होने के कारण महामाया को 'ललिता' कहा गया है। इसी महामाया, शक्तिस्वरूपा ललिता द्वारा समस्त ललित कलाओं की उत्पत्ति हुई।
क्योंकि कला की अधिष्ठातृ देवी, अपार सौन्दर्य की स्वामिनी (रूपविधायिनी शक्ति) स्वयं ललिता हैं, अतः उनके द्वारा प्रसूत कलाओं का प्रयोजन सौन्दर्य की सृष्टि के अतिरिक्त दूसरा हो भी क्या सकता है? यह सौन्दर्य अखंड, व्यष्टिस्वरूप, सूक्ष्म और एकरस है। उसकी अनुभूति के माध्यम भौतिक आधार नहीं, क्योंकि वह सार्वत्रिक और निःसीम है।
इस प्रकार 'लीला' आनन्द की अनुभूति है और उसमें कला (चिन्मय विलास) सौन्दर्यस्वरूप है। इन दोनों के समन्वय से ही महामाया का सूक्ष्म ललितास्वरूप जाना जा सकता है और साथ ही कला में सौन्दर्यबोध का यही भारतीय दृष्टिकोण है।
यद्यपि योरप के देषों में आज कला के महत्व को बड़े पैमाने पर स्वीकार किया जाने लगा है साथ ही यह भी कहा जाने लगा है कि भारत में कला की वास्तविकता को समुचित रूप में नहीं समझा गया, किंतु पष्चिम के उन विद्वानों की यह धारणा कितनी निरर्थक है, इसका स्पष्टीकरण कलाविषयक भारतीय साहित्य का सिंहावलोकन करने पर स्वतः ही हो जाता है। इसी प्रकार का आरोप सौन्दर्यबोध के संबंध में भी है। सौन्दर्यबोध का जो दृष्टिकोण पष्चिम के विचारकों का रहा है, यदि हम उसकी तुलना भारतीय विचारकों से करते हैं तो हमें लगता है कि पष्चिम की अपेक्षा भारत की सौन्दर्य–जिज्ञासा अधिक व्यापक एवं अनुभूतिपूर्ण है।
सौन्दर्य को तत्वज्ञान का आधार और उसमें लोकमंगल की अभीप्सा करने वाले योरापीय विचारकों में प्लेटों, अरस्तू, प्लोटीनस, टाल्सटाय, रस्किन और काण्ट का नाम प्रमुख है।

प्लेटों के मत से सौन्दर्याभिरूचि के कारण ही मनुष्य को दिव्यदृष्टि प्राप्त होती है और तब वह सामान्य धरातल से ऊंचा उठ कर सब में समान प्रेम, समान सौहार्द का दर्षन करता है। प्लोटीनस का कहना है कि परमेष्वर का मंगलमय स्वरूप ही सौन्दर्य है, जिसको प्राप्त कर लेने के बाद संसार की समस्त वस्तुओं में सौन्दर्य का दर्षन किया जा सकता है। टाल्सटाय का विचार है कि किसी भी कलाकृति के निर्माण का उद्देष्य लोक में धर्मबुद्धि का अधिष्ठान करना या नैतिक अभ्युत्थान की भावना की स्थापना करनी होनी चाहिए। कला, पहले जीवन के लिए है और तब उसका अन्य प्रयोजन है। कलाकृति को मनोरंजन का सस्ता माध्यम मानकर उसकी समीक्षा करना सौन्दर्यनिरीक्षण नहीं है। कला तो मानवता में ऐक्य का साधन है– ऐसा साधन, जिसमें एक ही प्रकार की भावनाएं तथा अनुभूतियां गुंफित हैं और इसलिए इसके द्वारा मानवजाति के कल्याण की आषा की जा सकती है।

रस्किन के अनुसार धर्म, अर्थ और मोक्ष, इस त्रिवर्ग का समन्वित रूप ही सौन्दर्य है। जिस कलाकृति के द्वारा हमें इन तीनों अभीप्साओं का एक साथ समावेष हुआ दिखाई देता है वही सौन्दर्यमंडित कलाकृति है। कला को रस्किन आंतरिक सुखबोध के रूप में स्वीकार करता है।

यूनानी दार्षनिक अरस्तू के सौन्दर्यबोध का सिद्धांत कुछ विस्तार से समझ लेना आवष्यक है। अरस्तू ने कला का अस्तित्व अधिक व्यापक रूप में स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि से कला एक अनुकृति है और काव्य भी उसी के अंतर्गत है। उनकी दृष्टि से नैसर्गिक सौन्दर्य के भीतर से बोलने वाली तथा जीवन में प्रेरणा जगा देने वाली रचना ही श्रेष्ठ कला है। कवि, चित्रकार, संगीतज्ञ, स्थपति आदि सभी कलाकार हैं, किंतु उनकी यह अनुकरणप्रक्रिया यांत्रिक न होकर जीवन का काल्पनिक पुनर्निमार्ण है।

अरस्तु के इस सिद्धांत का यद्यपि तत्कालीन साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा और उसके परिणामस्वरूप जीवन की यथार्थ घटनाओं को भी रंगमंच पर दर्षित किया जाने लगा, किंतु बाद के विचारकों ने अनुकृतिमात्र को श्रेष्ठ कला स्वीकार करने पर आपत्ति प्रकट की। कला में मानवस्वातंत्र्य की निष्ठा का समावेष भी आवष्यक समझा जाने लगा। कैमरे से उतारे गए किसी दृष्य को यदि चित्रकार अपनी तूलिका द्वारा घर पर बैठे ही कैनवस पर अंकित कर दे तो इन कैमरे–कैनवस दोनों की अनुकृतियों में यद्यपि कैमरे से उतारी गई अनुकृति मूल विषय से अधिक निकट है तब भी तूलिका द्वारा अंकित की गई अनुकृति को ही श्रेष्ठ समझा गया। ऐसा इसलिए कहा गया, क्योंकि कैमरे की आकृति में यांत्रिक प्रक्रिया है, जबकि तूलिका द्वारा उतारे गए चित्र में मानवीय भावनाओं का अपनापन भी सन्निविष्ट है। इसलिए इस मत के विचारकों ने कला को यथार्थ का दर्पण नहीं, बल्कि उसमें मानवीय कल्पनाओं के अभिनिवेष का होना आवष्यक बताया।

अरस्तू की अपेक्षा काण्ट का मत कुछ कम प्रभावषाली नहीं है। काण्ट की सौन्दर्यजिज्ञासा एकसाक्षिक होती हुई भी सर्वसाक्षिक है। जबकि कोई कलाकार अपनी कृति को देखकर स्वयमेव आत्मविभोर हो जाता है, तो निष्चित ही वह कलाकृति सभी के लिए समान रूप से आनन्ददायी सिद्ध होगी। किंतु काण्ट के मत से कलाकार में पहली योग्यता निरपेक्षता की होनी चाहिए। दूसरे उसमें उसका कोई स्वार्थ निहित नहीं होना चाहिए। इस दृष्टि से, काण्ट का सौन्दर्यबोध व्यक्तिगत रूचिनिरपेक्ष, अतएव सर्वजनवेद्य है।

क्रोचे तथा उसके अनुयायी स्पिन गार्न आदि विचारकों के मत से, टाल्सटाय के विपरीत, कला एक सौन्दर्यानुभूति है और सौन्दर्य का अपना प्रयोजन स्वयमेव है। उसको दूसरे प्रयोजन की आवष्यकता ही नहीं। नैतिक दृष्टि से कला में उपयोगिता को खोजना परंपरा का पूर्वाग्रह मात्र है। कला का एकमात्र उद्देष्य है अभिव्यक्ति, जो कि मूलतः एक मानस व्यापार है। क्रोचे ने 'अभिव्यक्ति' को 'सौन्दर्य' के पर्यायार्थ में स्वीकार किया है, क्योंकि उनकी दृष्टि से सौन्दर्य अपने आप में एक अखंड अनुभूति है।

इसलिए कलाकार के लिए यह आवष्यक नहीं कि अपनी कृतियों के लिए वह किसी षिक्षाप्रद या आदर्ष विषय को ही चुने।

बल्कि रेल के इंजिन से लेकर घर के आंगन में उगे हुए कुकुरमुत्ते तक किसी भी विषय को लेकर यदि वह अपने रंगों तथा रेखाओं द्वारा उसकी सहज अनुभूति को दर्षन के मन में जगा देता है तो वही वास्तविक कृति है।

भारतीय दृष्टि से सौन्दर्यबोध का संबंध वस्तुजगत के बाहर और भीतर, दोनों ओर से रहा है। भौतिक और आध्यात्मिक उसके दो पक्ष रहे हैं। वस्तुतः इन दोनों पक्षों को समान दर्जा दिए बिना सौन्दर्य की जो खोज होगी, उसको सर्वांगीण नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार के सौन्दर्यदर्षन के लिए विषेष दृष्टि का होना आवष्यक है। यह विषेष दृष्टि ही किसी कलावस्तु का गुण है, जो कि प्रत्येक कलाकृति में सूक्ष्म या स्थूल रूप में विद्यमान रहती है और जो दर्षक को कलाकार की अनुभूति तक ले जाने का माध्यम बनती है।

कला के बाह्य सौन्दर्य के स्वरूप की पहचान और परख के लिए पहला गुण है 'समानरूपता'। इस समानरूपता से ही कलाकार कलाकृति में सुरूचि का समावेष करता है। उदाहरण के लिए, यदि चित्र में आकृति के प्रत्येक अंग–उपांग को समुचित ढंग से चित्रित न किया जाएगा तो निष्चित ही देखेने वाले के हृदय में उससे विरुचि पैदा होगी। यही सुरुचि कलागत सौन्दर्य है, जो कि उसमें समानरूपता के कारण बनी रहती है।

सौन्दर्य के उत्कर्ष के लिए दूसरा अनिवार्य गुण है 'सुव्यवस्था'। सुव्यवस्थित ढंग से रखी हुई कोई भी वस्तु सभी को भली लगती है। कला में संयोजन, संघटन और अन्विति, इसके अपार नाम हैं। चित्र में रंगों का संयोजन उसकी सुव्यवस्था का परिचायक है। इसी प्रकार विषय के अनुसार अनुकूल वातावरण और उचित भूमिका उसकी अन्विति है। अतः चित्र में सौन्दर्यबोध के लिए सुव्यवस्था का होना आवष्यक है।

सुरुचि या सौन्दर्य के समावेष के लिए चित्र में 'विविधता' का होना भी आवष्यक है। मनोविज्ञान हमें यह बताता है कि किसी भी वस्तु में अनेकता की प्रक्रिया से वैचित्र्य की उद्भावना होती है और उस वैचित्र्य के कारण वस्तुगत सौन्दर्य एक के बाद दूसरा परिवर्तित होता रहता है, जिससे कि आनन्दानुभूति का तारतम्य बना रहता है। चित्र में यह विविधता कभी तो परस्पर विरोधी तत्वों के समावेष से और कभी वक्रता के कारण उत्पन्न होती है। चित्र में छाया–प्रकाष और गौरवर्ण मुख पर ष्मयावर्ण अलकें– ये विरोधी भाव सौन्दर्य के ही पोषक हैं। लक्षणा और व्यंजनापरक आचार्य कुन्तक की वक्रोक्ति प्रणाली इसी आनन्दानुभूति को दृष्टि में रखकर स्थापित की गई।

आनन्दानुभूति या सौंदर्यत्कर्ष के लिए चित्र में रेखा–रंग–आकृति और भाव, इन सबका ऐसा संयोजन होना चाहिए कि वे एक–दूसरे के उत्कर्ष को व्यक्त करें। यही 'संगति' है और इसका चित्रकला में वही स्थान है, जो संगीत में लय तथा वादन में गति का है। इनके अतिरिक्त भी संयम, कोमलता आदि अनेक सौंदर्यपोषक गुण है।

किंतु सौंदर्य का यह वस्तुनिष्ठ स्थूलपक्ष एकांगी है, क्योंकि इसका आधान रूप को लेकर हुआ है। इसी एकांगिकता के परिणामस्वरूप योरप में साहचर्यवाद की सृष्टि हुई, जिसके जनक थे जेफ्रे, एलिसन, बेन आदि। इन सौंदर्यषास्त्रियों ने इस रूपाधृत सिद्धांत का विरोध करते हुए कहा कि हमें किसी वस्तु की अनुभूति उसके वर्तमान स्वरूप के आधार पर नहीं, उसके पूर्वानुभूत स्वरूप के आधार पर होती है। जब हम एक वस्तु को सुन्दर और दूसरी वस्तु को असुंदर कहते हैं तो उस समय हमारी

दृष्टि के मूल में पूर्वकालीन अनुभूतियां विद्यमान रहती हैं। उन्हीं अनुभूतियों के कारण हमारे भाव और हमारी संवेदनाएं उभरती हैं और तब हमें सुखदुखातिरेक का भान होता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. आर.ए.अग्रवाल– भारतीय चित्रकला का इतिहास
2. वाचस्पति गैरोला– भारतीय चित्रकला
3. डॉ. ममता चतुर्वेदी– सौंदर्य शास्त्र
4. बद्रीनाथ मालवीय– श्री विष्णु धर्मोत्तर में चित्रकला
5. भाउ समर्थ– चित्रकला और समाज
6. रामलखन शुक्ल– भारतीय सौंदर्य शास्त्र का तात्विक